लिंग अनुपात : क्या कानून बेअसर है?

देश भर में किए गए एक ताज़ा अध्ययन का निष्कर्ष है कि सामाजिक-आर्थिक हालात में बदलाव या प्रसव-पूर्व लिंग चुनाव विरोधी कानून लागू होने का देश के लिंग अनुपात पर कोई खास असर नहीं हो रहा है।

देश में कन्या भ्रूण हत्या की समस्या की गंभीरता को देखते हुए 1996 में प्रसव-पूर्व लिंग जांच तकनीक निषेध कानून पारित किया गया था। उम्मीद की जा रही थी कि इससे भ्रूण की लिंग जांच करवाकर लिंग-आधारित गर्भपातों पर रोक लगेगी। मगर हार्वर्ड स्कूल ऑफ पब्लिक हेल्थ के डिपार्टमेंट ऑफ सोसायटी, ह्यूमन डेवलपमेंट एण्ड हेल्थ और पब्लिक हेल्थ फाउंडेशन ऑफ इण्डिया के शोधकर्ताओं द्वारा किए गए अध्ययन से ऐसा लग रहा है कि ये उम्मीदें पूरी होती नज़र नहीं आतीं।

यह अध्ययन देश भर के कुछ ऐसे परिवारों के साथ किया गया है जिनके बच्चे हैं। परिवारों का चयन इस तरह किया गया था कि ये देश की पूरी आबादी का प्रतिनिधित्व करें। शोधकर्ताओं ने यह जानने का प्रयास किया कि प्रसव पूर्व लिंग जांच कानून बनने से पहले और बाद में लड़का होने की संभावना में कितना फर्क आया है। अध्ययन से पता चलता है कि कानून बनने के पहले और बाद की स्थितियों में लड़का होने की संभावना में कोई अंतर नहीं पड़ा है।

शोधकर्ताओं ने पाया कि लड़का होने की संभावना परिवार की आमदनी बढ़ने के साथ बढ़ती है। जिन परिवारों में मुखिया हायर सेकंडरी या उससे ज़्यादा शिक्षित हैं, उनमें लड़का होने की संभावना उन परिवारों से ज़्यादा है जिनके मुखिया कभी स्कूल न गए हों।

अध्ययन का एक रोचक निष्कर्ष यह है कि लड़का होने की संभावना पर जाति का कोई असर नहीं था। और न ही इस पर मुखिया के पति या पत्नी की शिक्षा का कोई असर पड़ता है।

राज्यों के स्तर पर बांटकर देखें तो पंजाब में किसी परिवार को लड़का होने की संभावना सर्वाधिक है जबकि केरल में काफी कम है।

अध्ययन से जुड़े एक शोधकर्ता एस. वी. सुब्रमण्यन कहते हैं कि दक्षिण एशिया क्षेत्र में लिंग असंतुलन की बात जानी-मानी है मगर इसके सामाजिक विश्लेषण या सामाजिक पैटर्न के अध्ययन बहुत कम हुए हैं। इस दृष्टि से यह अध्ययन महत्वपूर्ण है। ***(स्रोत फीचर्स)***